जाने दो, उसके पास जाने दो, क्या नहीं जाने दोगे? तब तलवार से मेरा सिर काट दो और उससे कह दो कि मैं मर गया। पर उसको धोखा मत दो।

(शंकर का प्रवेश)

शंकर--मैंने सुना है कि तुम्हें खोजने के लिये शत्रुओं के गुप्तचर आ रहे हैं। चलो, यहाँ क्षण भर भी ठहरना उचित नहीं है।

कुमार--कहाँ जाऊँगा? छिप कर क्या करूँगा? इस जीवन को अब मैं धारण नहीं कर सकता।

शंकर--वन में, सुमित्रा तुम्हारा आसरा देख रही है।

कुमार--चलो तब चलता हूँ। हा! इला तुम कहाँ हो। इला, तुम्हारे द्वार पर आकर मैं लौटा जाता हूँ। विपत्ति के दिनों में चारो ओर से संसार के सुख के द्वार बन्द हो जाते हैं। प्रिये, मैं हतभाग्य हूँ, पर अविश्वासी नहीं हूँ। चलो भाई चलें।

चतुर्थ दृश्य

त्रिचूड़—अन्तःपुर

इला और सखियाँ

इला—झूठ है, झूठ है ! तुम सब चुप रहो ! मैं उनका हृदय जानती हूँ। सखी, मेरे बालों को फूलों से गूंथ दे, वही नीली साड़ी ले आ। सोने के थाल में खिले हुए मालती के फूल ले आ, नदी के तट पर उसी बकुल वृक्ष के नीचे जहाँ वह बैठते थे, वहीं चट्टान पर मेरे लिये आसन बिछा दे। इसी भाँति प्रतिदिन शृङ्गार करके मैं वहाँ जाकर बैठी रहूँगी। न जाने कब सहसा मेरा प्रियतम आ जाय। हमलोगों का मधुर-मिलन देखने के लिये पूर्णिमा की रात्रि दो बार आई, पर निराश होकर चली गई। परन्तु अब मुझे निश्चय है कि इस बार की पूर्णिमा कदापि निष्फल नहीं होगी। इस बार वह निश्चय मुझ से मिलने आवेंगे। पर यदि वह न भी आवें तो इससे तुमलोगों का क्या? मुझे यदि वह भूल ही जाँय तो उस दुःख को मैं ही समझ सकूंगी। मुझ में कौनसी ऐसी बात है कि वह मुझे न भूल जाँय? मुझे भूल कर यदि वह सुखी हों तो वही अच्छा है। यदि वह मुझ से प्रेम करके सुखी हों तो वह भी अच्छा है। सखी, तुमलोग व्यर्थ न बको, थोड़ी देर चुप रहो।

गीत

निशिदिन तेरे ध्यान मग्न हो, रात्तों जाग बिताऊंगी।
आवे जिस दम याद तुमारी, रो रो आंख गवाँऊंगी॥

प्रातः आकर पास खड़े हो, चन्द मुखड़ा दिखला देना।
सुख से करो आनन्द भवन में, नेकु नहीं रिसिआऊंगी॥
बहते रहो मौज लहरों में, मनमें मेरे यह इच्छा।
साथ तुम्हारे आऊँगी, तो राह तुम्हारी पाऊंगी॥
यदि साथ विधाता ना देवे, तो हानि तुमारी तनिक नहीं।
ऐसा भूलना तुम मुझे, कि याद न फिर मैं आऊँगी॥

पञ्चम दृश्य

काश्मीर-शिविर

विक्रमदेव, जयसेन और युधाजित

जय—वह भागकर कहाँ जायगा? राजन् मैं उसे पकड़ लाकर आपके चरणों में डाल दूँगा। बिल के बाहर आग लगा देने से जैसे उत्ताप से घबड़ा कर साँप बाहर निकल आता है वैसे ही जब समस्त काश्मीर को घेरकर आग लगा दूँगा तब वह भी स्वयं आ कर आपके चरणों में आत्मसमर्पण कर देगा।

विक्रम—उसके पीछे-पीछे न जाने कितने वन, कितनी नदियाँ और कितने ऊँचे ऊँचे पर्वतों को लांघकर यहाँ तक आया हूँ। पर वह हाथ नहीं आता। मैं उसको चाहता हूँ, मैं उसीको चाहता हूँ। उसके बिना मुझे सुख नहीं, मुझे नींद नहीं है। शीघ्र यदि मैं उसको न पाऊँगा तो समस्त काश्मीर को छिन्न-भिन्न करके देखूँगा कि वह कहाँ है।

युधा—महाराज, मैंने यह घोषणा कर दी है कि जो कोई उसे पकड़ा देगा, उसे पुरस्कार दिया जायगा।

विक्रम–उसे पाये बिना मैं दूसरे कामों में हाथ नहीं लगा सकता हूँ । मेरा राज्य सूना पड़ा है । राजकोष खाली हो रहा है । देशमें दुर्भिक्ष फैल रहा है, देश में विद्रोह फैल गया है पर तौ भी मैं अपने राज्य में लौट नहीं सकता हूँ । ओह ! यह तो मानो मुझी को दृढ़–बन्धन में बाँधकर शत्रु भाग गया है । जान पड़ता है कि वह आया, बस वह आ गया, वही दिखाई पड़ रहा है, वह धूल उड़ रही है अब देर नहीं है । इस बार वह दौड़ते और हाँफते हुए हरिण की तरह दिखाई पड़ेगा । जल्दी लाओ उसको, चाहे वह जीवित हो अथवा मृत । नहीं तो मेरे पास जो कुछ है सब नष्ट हो जायगा ।

(पहरेदार का प्रवेश)

पहरे––राजा चन्द्रसेन और उनकी रानी आपसे मिलने के लिये आयी हैं ।

विक्रम––(जयसेन और युधाजित से) तुमलोग ज़रा हट जाओ । (पहरेदार से) उनसे मेरा प्रणाम कहकर आदर पूर्वक ले आओ ।

(और सबका प्रस्थान)

क्या करूँ ! मेरे सास ससुर आ रहे हैं । जब वह कुमार के बारे में पूछेंगे तब मैं क्या उत्तर दूँगा ? कुमार के लिये यदि वह क्षमा माँगेंगे तो मैं क्या कहूँगा ! विशेष करके मैं स्त्रियों का रोना नहीं देख सकता ।

(चन्द्रसेन और रेवती का प्रवेश)

विक्रम––प्रणाम ! प्रणाम !

चन्द्र––चिरंजीव हो !

रेवती—तुम्हारी विजय हो, तुम्हारी सब मनोकामनायें पूर्ण हों।

चन्द्र—मैंने सुना है कि कुमार ने तुम्हारा कुछ अपराध किया है।

विक्रम—जी हाँ, उसने मेरा अपमान किया है।

चन्द्र—उसको कौनसा दण्ड देना तुमने विचारा है?

विक्रम—कैदी की तरह यदि वह अपना अपराध स्वीकार कर लेगा, तो मैं उसे क्षमा कर दूँगा।

रेवती—केवल इतनाहीं? और कुछ भी नहीं? यदि उसे क्षमा ही करना था तो इतना कष्ट सहकर, इतनी सेना लेकर, इतनी दूर आने की क्या आवश्यकता थी?

विक्रम—मेरा तिरस्कार न कीजिये। राजा का प्रधान काम अपने मान की रक्षा करना ही है। जो मस्तक पर मुकुट धारण करता है वह अपमान के बोझ को नहीं उठा सकता। मैं यहाँ व्यर्थ नहीं आया हूँ।

चन्द्र—बेटा, उसे क्षमा करो। वह नासमझ बालक है। यदि तुम्हें उसे दण्ड देना ही हो, तो उसका राज्याधिकार छीन लो, उसकी राजगद्दी छीन लो, उसे देश से निकाल दो, पर उसका प्राण न लेना।

विक्रम—मैं उसका प्राण लेना नहीं चाहता।

रेवती—तब इतना अस्त्र-शस्त्र क्यों लाये हो? निर्दोषी प्रजा और सैनिकों का तो संहार कर जाओगे, पर जो यथार्थ अपराधी है उसे क्षमा कर दोगे?

विक्रम—महारानी, आप क्या कहती हैं, मेरी समझ में नहीं आता।

चन्द्र—कुछ नहीं, कुछ नहीं। मैं समझा देता हूँ। जिस समय कुमार ने मुझसे सेना माँगी, मैंने उससे कहा कि, विक्रम हमारे स्नेहपात्र हैं, उनसे युद्ध करना उचित नहीं जान पड़ता। इसी दुःख से उसने क्रुद्ध होकर प्रजाओं के घर जा जाकर उन्हें विद्रोह करने के लिये उत्तेजित किया। इसीसे महारानी उसपर अप्रसन्न हैं और उस राजविद्रोही को दण्ड देने के लिये तुम से कहती हैं। परन्तु वत्स, उसे कठोर दण्ड न देना। क्योंकि वह अभी नासमझ बच्चा है।

विक्रम—पहिले उसे कैद कर लूं। उसके उपरान्त विचार करूँगा।

रेवती—प्रजागणों ने उसे छिपा रखा है। तुम प्रजाओं के प्रत्येक घरों में आग लगा दो। उनके खेतों को जला दो। भूख रूपी राक्षसी के हाथों में देश को सौंप दो। तब प्रजा उसको बाहर निकालेगी।

चन्द्र—चुप रहो, चुप रहो रानी। बेटा! काश्मीर के राज-महल में चलो।

विक्रम—आप चलें, मैं पीछे से आऊँगा।

(चन्द्रसेन और रेवती का प्रस्थान)

विक्रम—अरे यह कैसी क्रूर स्त्री है, मानो साक्षात् नरक की अग्नि शिखा है। मेरे साथ मित्रता करके यह अपना काम साधना चाहती है। इतने दिनों के उपरान्त मुझे अपने हृदय की प्रतिमूर्ति इस स्त्री के मुख में दर्पण की तरह दिखाई पड़ी। परन्तु क्या मेरे ललाट की रेखायें ऐसी ही क्रूर, ऐसी ही टेढ़ी, ऐसी ही छुरी की तरह तेज़ और ऐसी ही ज्वालामयी हैं? छिपी हुई हिंसा के बोझ से क्या मेरे भी दोनों होठ लटक

गये हैं? खूनी की ज़हर से बुझाई हुई छुरी की तरह क्या मेरी बातें भी वैसी ही तीक्ष्ण, वैसी ही उष्ण, वैसीही कठोर हैं? नहीं नहीं, कदापि नहीं। मेरे हृदय की यह हिंसा भयंकर और प्रचण्ड अवश्य है, परन्तु विश्वासघातक नहीं है, क्रूर नहीं है छद्मवेषमें छिपी नहीं है। मेरे हृदय की यह ज्वाला प्रचण्ड प्रेम की तरह प्रबल और दुर्निवार्य है। अरी भयंकर स्त्री? मैं तेरा आत्मीय नहीं हूँ। हे विक्रम! इस प्रलयकारी खेल को बन्द करो। श्मशान के इस ताण्डव नृत्य को रोक दो, इस भयंकर चिता को बुझा दो, जिससे इस श्मशान के पिशाच और पिशाचिनी, विना तृप्त हुए ही हिंसारूपी तृष्णासे छटपटाते हुए लौट जायँ। एकदिन इनको मैं समझादूंगा कि मैं तुम्हारा कोई नहीं हूँ। तुम्हारा यह गुप्त लोभ, कभी सफल नहीं होगा, तुम्हारी यह हिंसामयी तृष्णा कभी मिटेगी नहीं। मैं देखूंगा कि अपने ही विष से विषधर सर्प की तरह ऐसे मनुष्य कैसे जल मरते हैं। ओ हो! स्त्रियों का हिंसा से भरा हुआ मुख कैसा भयंकर, कैसा निष्ठुर और कैसा कुत्सित दिखाई पड़ता है।

(गुप्तचर का प्रवेश)

गुप्तचर—महाराज, कुमार त्रिचूड़ की ओर गये हैं।

विक्रम—इस समाचार को गुप्त रखना, मैं शिकार के बहाने वहाँ जाऊँगा।

गुप्तचर—जो आज्ञा।

षष्ठ दृश्य

जंगल

सूखे पत्तों की शय्या पर कुमार सोये हैं और सुमित्रा बैठी हैं।

कुमार—बहिन अब कितनी रात है ?

सुमित्रा—रात अब नहीं है भैया। आकाश में लाली छा गई है, पर वन-वृक्षों की छाया ने अन्धकार को रोक रखा है।

कुमार—तुम सारी रात बैठी बैठी जाग रही हो, बहिन तुम्हें नींद क्यों नहीं आई ?

सुमित्रा—बुरे स्वप्न देखकर मैं जाग उठी हूँ। कई दिनों से ऐसा जान पड़ता है कि मानो कोई सूखे पत्तों पर चल रहा है। जान पड़ता है कि पेड़ों की आड़ में कोई धीरे धीरे गुप्त मन्त्रणा कर रहा है। थकाहट से आँखें जरा सी यदि लग भी जाती हैं, तो भयंकर दुःस्वप्न देख कर जाग उठती हूँ। पर जब सुख से सोये हुए तुम्हारे मुख को देखती हूँ तो मेरे जी में जी आता है।

कुमार—बुरी चिन्ता ही बुरे स्वप्नों की जननी है। बहिन, तुम मेरे लिये सोच न करो। मैं बड़े सुख से हूँ। जीवन-रूपी नदी के मझधार में डूबकर जीवन का आनन्द कौन जान सकता है ? पर मृत्यु के तटपर बैठ कर मानो मैं इस जीवन के आनन्द का भरपूर उपभोग कर रहा हूँ। संसार के सब सुख, सब शोभा, सब प्रेम एक साथ मानो मुझे आलिंगन कर रहे हैं। जीवन के प्रत्येक बूँद में जितनी मिठास है मैं उन सब

का स्वाद पा रहा हूँ । घने जंगल, ऊँचे शिखर, अनन्त आकाश, कलकल शब्द करती हुई नदियां इन सब की आश्चर्य्य शोभा देखकर मैं मुग्ध हो रहा हूँ । अयाचित प्रेम वन-वृक्षोंसे पुष्प-वृष्टि की तरह मुझ पर बरस रहे हैं। मेरे चारो ओर मेरी भक्त प्रजा मेरी रक्षा कर रही है । प्रेममयी माता की तरह, बहिन, तू मेरे सिरहाने बैठी है । अहा ! इससे बढ़कर और कौन सा सुख होगा । उड़ने के पहिले मानो मेरा जीवन-विहंग अपना रंग-विरंग पंख फैला रहा है। बहिन सुनो, वह लकड़हारा गीत गाता हुआ आ रहा है । उससे राज का समाचार मिलेगा ।

(लकड़हारे का प्रवेश)

गीत

बन्धु करूँगा तुमको राजा इसी वृक्ष के नीचे ।
बन फूलों की माला दूँगा प्रेम जल से सींचे ।
सिंहासन के लिये हृदय को दूँगा तुरत बिछाय ।
अश्रुजलों से प्रेम मन्त्र से दूँगा तुम्हें नहलाय ।

कुमार—(आगे बढ़कर) सखा, आज क्या समाचार है ?

लकड़०—प्रभु ! समाचार अच्छा नहीं है. कल रात को जयसेन ने नन्दीग्राम जला दिया है। आज पाण्डुपुर की ओर आ रहा है ।

कुमार—हाय, मेरी भक्त प्रजा, तेरी रक्षा मैं कैसे करूँ ? भगवन्, दीन पर आप इतने निष्ठुर क्यों हैं ?

लकड़०—(सुमित्रा के प्रति) माता, यह लकड़ियों का बोझ आप के श्री चरणों में भेट है, इसे अंगीकार करो ।

सुमित्रा—सुखी रहो, भगवान तुम्हारा मंगल करें ।

(लकड़हारे का प्रस्थान)

[भील का प्रवेश]

कुमार—क्या समाचार है ?

भील--युवराजजी, सावधान रहिये। किसी पर विश्वास न कीजिये। युधाजित ने ढिंढेरो पिटवो दिया है कि जो आपको जीवित या मृत पकड़ा देगा उसे पुरस्कार मिलेगा।

कुमार--विश्वास करके मरना भी अच्छा है, पर अविश्वास मैं किस पर करूँ, क्योंकि तुम सब तो मेरे अनन्य भक्त सरल-हृदय मित्र हो।

भील—माताजी, थोड़ी सी शहद ले आया हूं, दया करके इसे ग्रहण करो।

सुमित्रा—भगवान तुम्हारा मंगल करें।

(भील का प्रस्थान)

(शिकारी का प्रवेश)

शिकारी—जय हो प्रभु ! शिकार के लिये मुझे दूर पहाड़ पर जाना होगा, वह स्थान बड़ा दुर्गम है आपके चरणों में प्रणाम करके जाता हूं। कल जयसेन ने मेरा घर जला दिया है।

कुमार--धिक्कार है उस पिशाच को !

शिकारी--हमलोग शिकारी हैं, वन ही हमारा घर है। जब तक वन है, हमको गृह हीन कौन कर सकता है ? माता कुछ भोजन की सामग्री लायो हूँ। गरीब का यह तुच्छ उपहार स्वीकार करो। माता आशीर्वाद दो कि मैं लौटकर अपने युवराज को राजसिंहासन पर बैठे हुए देखूँ।

कुमार—(हाथ बढ़ा कर) आओ भाई, आओ तुमसे भेंट ूं।

(शिकारी का प्रस्थान)

कुमार—वृक्षों के पत्तों में से सूर्य्य की किरणें दिखाई पड़ रही हैं। चलूँ, नदी तट पर चलकर स्नान सन्ध्या कर।

नदी तट पर बैठ कर अपनी छाया जब जल में देखता हूँ तो जान पड़ता है कि मैं केवल छाया मात्र हूँ। यह नदी बहती हुई त्रिचूड़ के प्रमोद वन की ओर चली गई है। इच्छा होती है कि मेरी छाया भी इसी नदी के स्रोत में बहकर, जहाँ सन्ध्या समय इला इस नदी तीर के वृक्ष के नीचे बैठी रहती है। चली जाय और उसकी म्लान छाया को अपने साथ लेकर सदा के लिये अनन्त समुद्र की ओर बह जाय। यह सब स्वप्न-कल्पना व्यर्थ है, चलो बहिन प्रातः कृत्य कर आवें। वह सुनो पक्षियों के गीत से वन गूँज उठा।

सप्तम दृश्य

त्रिचूड़-प्रमोदवन

विक्रमदेव और अमरूराज

अमरू—जो कुछ मेरे पास है वह सब मैं आपको भेंट करता हूँ। आप वीर हैं, आप महाराजाधिराज हैं मेरी कन्या आप ही के योग्य है, उसे आप अंगीकार कीजिये। माधवी-लता सुगन्धित आम्र-वृक्ष पर ही शोभा देती है। महाराज थोड़ी देर आप यहाँ ठहरिये, मैं अभी उसे यहाँ भेजे देता हूँ।

विक्रम—यहाँ कैसी मधुर शान्ति है। इस वन में रहना कैसा सुखद है, वृक्षों की घनी छाया, नदी की कलकल ध्वनि, मनको मुग्ध करती है। अहा! शान्ति कैसी शीतल, कैसी गंभीर और कैसी निस्तब्ध है। बहुत दिनों से मैं इसे भूल गया था। जान पड़ता है कि मेरे हृदय की भयंकर ज्वाला भी यहाँ शान्त हो

जायगी और उसका कोई चिह्न नहीं रह जायगा । हा! ऐसा ही सुख, ऐसी ही शान्ति मुझे मिली थी, पर वह न जाने किसके अपराध से चली गई । मेरे या उसके? चाहे जिसके अपराध से गई हो पर क्या मैं उसे इस जन्म में अब न पाऊँगा! जाओ, तब चली जाओ, सदा के लिये दूर चली जाओ । जीवन में अनुताप के रूप में बनी न रहो । देखूं कदाचित संसार के इस निर्ज्जन नेपथ्य में नवीन प्रेम का आस्वाद वैसा ही गंभीर, वैसा ही मधुर पाजाऊँ ।

[सखियों के सहित इलाका प्रवेश]

अहा! यह कैसी मनोहर मूर्त्ति है! मैं धन्य हूँ । देवि इस आसन को ग्रहण करो । मौन क्यों हो सिर क्यों झुकाये हो! तुम्हारा मुख उदास क्यों है? देहलता कांप क्यों रही है? देवि, तुम्हें किस बात का कष्ट है?

इला—(घुटने टेक कर) मैंने सुना है कि आप महाराजाधिराज हैं, आप ससागरा पृथ्वी के अधीश्वर हैं । मैं आपसे कुछ भिक्षा चाहती हूँ ।

विक्रम—उठो, उठो सुन्दरी! तुम्हारे ये कोमल चरण इस कठिन भूमि के योग्य नहीं हैं । तुम इस प्रकार धरती पर क्यों पड़ी हो? संसार में ऐसी कौन सी वस्तु है जो मैं तुम्हें न देना चाहूँ?

इला—महाराज, पिताजी ने मुझे आपको सौंप दिया है, मैं स्वयं अपने ही को आपसे माँगती हूँ, मुझे आप लौटा दीजिये । आप के पास न जाने कितना धन, रत्न, राज्य और देश होंगे, केवल मुझे यहीं छोड़ जाइये । आपको किसी बात की कमी नहीं है ।

विक्रम—कौन कहता है कि मुझे किसी बात की कमी नहीं है। मैं अपने हृदय को कैसे दिखाऊँ? यदि उसे दिखा सकता तो तुम्हें दिखाता कि वहाँ न धन है न रत्न और न ससागरा पृथ्वी! मेरा हृदय सूना है! यदि मेरे पास राज और ऐश्वर्य कुछ भी न होता पर तुम होती तो?

इला—(उठकर) तब ले चलो मुझे ले चलो! जिस प्रकार बन की हरिणी को तीखे बाणों से बेधकर अहेरी उसे ले जाते हैं उसी प्रकार पहिले मेरा प्राण निकाल कर तब मुझे ले चलो।

विक्रम—देवि! मेरे प्रति इतनी घृणा क्यों कर रही हो? मैं क्या नितान्त तुम्हारे अयोग्य हूँ? इतने राज्य और देशों को मैंने जीता, परन्तु क्या प्रार्थना करने पर भी तुम्हारा यह हृदय मुझको नहीं मिल सकता?

इला—मेरा हृदय तो अब मेरा नहीं है। बिदाई के समय जिसे अपना समस्त हृदय सौंप दिया था वही उसे लेकर चला गया है, पर वह इसी उपवन में मिलने को कह गया है। बहुत दिन बीत गये पर वह अभी तक नहीं आया। यह उपवन अच्छा नहीं लगता, पर यह सोचकर कि कहीं वह आकर बिना मुझे देखे लौट न जाय। रात-दिन उसीकी बाट जोहा करती हूँ। महाराज मुझे कहाँ ले जाओगे! जो यहाँ मुझे छोड़ गया है उसीके लिये मुझे यहाँ छोड़ जाओ।

विक्रम—वह भाग्यशाली पुरुष कौन है? सावधान! अगाध असीम प्रेम को ईश्वर देख नहीं सकता। किसी समय मैं भी इस संसार को तुच्छ समझ कर केवल प्रेम ही करता था। पर उस प्रेम को ईश्वर सह नहीं सका। उस प्रेम रूपी निद्रा से जागकर देखा कि संसार तो वैसे ही चल रहा है, पर

मेरा प्रेम चूर्ण हो गया है। अच्छा बताओ, जिसके लिये तुम बैठी हो उस भाग्यवान का नाम क्या है?

इला--काश्मीर के युवराज--कुमारसेन।

विक्रम--कुमार!

इला--क्या आप उन्हें जानते हैं? भला उन्हें कौन नहीं जानता! काश्मीर की सब प्रजा उनको प्राणों से भी बढ़ कर चाहती है।

विक्रम--कुमार! काश्मीर के युवराज!

इला--हाँ महाराज। वही उनका यश चारो ओर फैल रहा है। क्या आपके भी वह मित्र हैं? वह महान पुरुष हैं। पृथ्वी के योग्य अधिपति हैं।

विक्रम--उसका सौभाग्य-सूर्य्य अस्त हो गया, उसकी आशा अब छोड़ दो। आखेट के मृग की तरह वह आज भाग रहा है। उसके लिये आज कहीं आश्रय-स्थान नहीं है। घने जंगलों में वह छिपा है, उससे तो इस काश्मीर का दीन भिक्षुक भी अधिक सुखी है।

इला--क्या कहते हो महाराज!

विक्रम--तुम लोग पृथ्वी के एक कोने में बैठी हुई केवल प्रेम किया करती हो, पर यह नहीं जानती कि बाहर विश्व-संसार गरज रहा है। अश्रुपूर्ण विशाल आँखों से तुम लोग देखा करती हो, पर यह नहीं जानती कि कर्मस्रोत में न जाने कौन कहाँ बहा जा रहा है। अब उसकी आशा व्यर्थ है।

इला--महाराज सच कहो। मुझसे छल न करो। इस क्षुद्र रमणी का प्राण उसी के सहारे बँधा है। उसी की बाट जोह रहा है। बताओ किस निर्जन राह में किस घोर वन में मेरा

कुमार घूम रहा है? मैं वहाँ जाऊँगी। मैं घर छोड़कर कहीं नहीं गई हूँ, मुझे किस ओर किस राह से जाना होगा?

विक्रम--वह विद्रोही है, राजसैन्य उसकी खोज में लगी है।

इला--तब क्या तुम उनके मित्र नहीं हो? तुम लोग क्या उसकी रक्षा नहीं करोगे? राजपुत्र वन में मारे मारे फिर रहे हैं और तुम राजा होकर उनकी यह दशा चुपचाप देखते रहोगे? क्या तुम लोगों को इतनी दया भी नहीं है? प्रियतम, प्रियतम! मैं तो नहीं जानती थी कि तुम संकट में पड़े हो, मैं तो यहाँ तुम्हारा आसरा देख रही थी। बहुत विलम्ब होने से विजली की चमक की तरह मन में सन्देह होता था। मैं सुनती थी कि तुम्हें बहुत लोग प्यार करते हैं, परन्तु आज विपत्ति के समय वे कहाँ हैं? महाराज, आप तो पृथ्वी के राजा हैं क्या आप असहायों के कोई नहीं हैं, क्या इतनी सेना, इतना यश, इतनी शक्ति लेकर आप चुपचाप बैठे रहेंगे? अच्छा, तब रास्ता बता दीजिये. मैं अकेली अबला उसके लिये जीवन-समर्पण करूँगी।

विक्रम--आह! कैसा प्रबल और अगाध प्रेम है। प्रेम करो! प्रेम करो!! ऐसे ही प्रबल वेग से प्रेम करती रहो। जो तुम्हारे हृदय का राजा है केवल उसीके साथ प्रेम करो। यद्यपि मैं प्रेम-स्वर्ग से भ्रष्ट हूँ पर तुम्हारा पवित्र प्रेम देखकर अपने को धन्य समझता हूँ। देवि! मैं तुम्हारा प्रेम छीनना नहीं चाहता। सूखे वृक्ष पर अन्य वृक्षों से फूल झरते हैं, पर अन्य वृक्षों के फूलों को तोड़ कर उसे कोई कैसे सजा सकता है? मेरा विश्वास करो, मैं तुम्हारा बन्धु हूँ। चलो मेरे साथ, मैं

उससे तुम्हें मिला दूँगा। कुमार को काश्मीर के राजसिंहासन पर बैठा कर कुमारी मैं तुम्हें उन्हें सौंप दूँगा।

इला—महाराज, आपने मुझे प्राण-दान दिया है। जहाँ कहिये मैं चलने के लिये तैयार हूँ।

विक्रम—काश्मीर चलना होगा, शीघ्र तैयार हो आओ।

(इला और सखियों का प्रस्थान)

युद्ध अब अच्छा नहीं लगता। पर शान्ति तो उससे भी अधिक बुरी लगती है। मुझसे तो वे गृहहीन पलातक भी सुखी हैं क्योंकि वे संसार में जहाँ जाते हैं वहीं रमणी का सच्चा प्रेम देवताओं की कृपा की भाँति उनके साथ साथ रहता है। उस कृपाके पवित्र किरणों से विपत्तिका बादल भी सोने की तरह चमक उठता है। मैं अब किस सुख से देश-देशान्तरों में भटक रहा हूँ। यद्यपि मेरे हाथों में जय-ध्वजा है, पर हृदय तो हिंसा और अभिशाप से जल रहा है। यदि कहीं किसी के स्निग्ध हृदय रूपी सरोवर में शुभ्र ओस से शीतल प्रेम-रूपी कमल खिल रहा हो, तो उसे देखकर हृदय की ज्वाला मिटाऊं। हे सुन्दरी, प्रेममयी अपने पवित्र अश्रुजल से मेरा यह रक्त से भरा हुआ कलुषित हाथ धो दो।

(पहरेदार का प्रवेश)

पहरे—महाराज, देवदत्त आये हैं, आप के दर्शन के लिये बाहर खड़े हैं।

विक्रम—उन्हें यहाँ ले आओ।

(देवदत्त का प्रवेश)

देव—दुहाई है महाराज! इस दीन ब्राह्मण की रक्षा कीजिये।

विक्रम—यह क्या! तुम यहाँ कहाँ से आ गये? जान

पड़ता है ईश्वर अब मेरे ऊपर अनुकूल है। बन्धु, तुम मेरे एक रत्न हो।

देव—ठीक है, महाराज मैं आप का रत्न ही हूँ, इसी से तो आपने मुझे बड़े यत्न से बन्द कर रखा था। सौभाग्य से द्वार खुला देखकर भाग आया हूँ पर महाराज अब मुझे रत्न के धोखे कहीं फिर पहरेदारों के हाथ सौंप न दीजियेगा। क्योंकि मैं केवल आपका बन्धु रत्न नहीं हूँ अपने ब्राह्मणी का स्वामी रत्न भी हूँ। हा, वह क्या अब तक जीवित होगी!

विक्रम—यह क्या बात है? मुझे तो यह कुछ भी नहीं मालूम था कि तुम इतने दिनों से कैद हो?

देव—महाराज! आप क्या जानेंगे आप के दोनों पहरेदार जानते हैं। कितने शास्त्र, कितनी कविता उनको सुनाता था पर उन्हें सुनकर वे दोनों मूर्ख केवल हँसते थे। एक दिन वर्षाकाल में विरह से व्याकुल होकर मेघदूत काव्य दोनों को सुना रहा था, उसे सुनकर दोनों गँवार नींद से सो गये। उसी समय कारागार से भाग कर यहाँ चला आया हूँ। महाराज! इसमें सन्देह नहीं कि आपने खूब चुन चुनकर उन दो आदमियों को पहरे पर रखा था। आपके पास इतने मनुष्य हैं, शास्त्र समझने वाले क्या ऐसे दो आदमी आपके पास नहीं थे?

विक्रम—मित्र, जिसने तुम्हें कैद कर रखा था वह निश्चय क्रूर-हृदय जयसेन है। उसने तुम्हें घोर कष्ट दिया है मैं उसे अवश्य कठोर दण्ड दूँगा।

देव—महाराज, दण्ड पीछे देना, इस समय युद्ध बन्द करके अपने राज्य में चलिये। मैं सच कहता हूँ, महाराज, विरह साधारण पीड़ा नहीं है, पहिले मैं समझता था कि केवल बड़े लोग ही विरह से व्याकुल होते हैं, पर इस बार तो मैं जान-

गया कि इस गरीब ब्राह्मण को भी कामदेव नहीं छोड़ता। उसकी दृष्टि में सभी बराबर हैं। वह छोटे और बड़े का विचार नहीं करता।

विक्रम—यम और प्रेम, इन दोनों ही की सब जीवों पर समदृष्टि है। चलो मित्र अपने राज को लौट चलें। केवल चलने के पहिले एक काम कर लेना है, उसका भार मैं तुम्हीं को देता हूँ। वन में कुमारसेन छिपे हैं, त्रिचूड़राज से उसका पता तुम्हें मिल जायगा। मित्र उनसे मिलकर कह दो कि मैं अब उनका शत्रु नहीं हूँ। शस्त्र फेंककर प्रेम से केवल उन्हें बन्दी करना चाहता हूँ। हाँ सखे, और भी कोई यदि वहाँ हो–यदि और भी कोई वहाँ तुम्हें दिखाई पड़े...

देव—जानता हूँ, मैं जानता हूँ। महारानी की भक्ति सदा मेरे हृदय में बनी है, अबतक मैंने कुछ नहीं कहा क्योंकि मुझसे कुछ कहा नहीं जाता। अब उनकी बातें अनिर्वचनीय हो गईं हैं। वह सती साध्वी हैं, इसीसे इतना दुःख उठा रही हैं। उनकी बातें जब सोचता हूँ तो मुझे पुण्यवती जानकीजी की कथा याद आ जाती है। जाता हूँ।

विक्रम—वसन्त ऋतु आने के पहिले ही दक्षिणी हवा चलने लगती है। उसके उपरान्त नये फूल और पत्तों से वन लक्ष्मी सुशोभित हो जाती है। तुमको देखकर मुझे आशा होती है कि मेरे वही पुराने दिन अपने सब सुखों के साथ लौट आवेंगे।

अष्टम दृश्य

जंगल

कुमारसेन के दो अनुचर

पहिला—देख रे मोहन, कल मैंने जो सपनो देखा है उसका कुछ मतलब समझ में नहीं आता। आज शहर में जाकर ज्योतिषीजी से उसका फल पूछ आना होगा।

दूसरा--क्या सपना देखा है, जरा बता तो सही, मैं भी सुनूं।

पहिला--एक महापुरुष जल से निकलकर मुझको तीन बड़े बड़े बेल देने लगे। मैंने दोनों हाथों में दो बेल तो ले लिये, पर एक बेल कैसे लुँ यह सोचने लगा।

दूसरा--तू भी कैसा मूर्ख है, अरे तीनों ही बेल को दुपट्टे में क्यों नहीं बाँध लिया?

पहिला--जागने पर तो सभी को अक्ल सूझने लगती है, पर उस समय तू कहाँ था? हाँ उसके बाद क्या हुआ, सो तो सुन, वह एक बेल ज़मीन पर गिर कर लुढ़कने लगा और मैं भी उसके लेने के लिये दौड़ा। थोड़ी दूर जाकर क्या देखता हूँ कि युवराज पीपल के पेड़ के नीचे बैठकर सन्ध्या कर रहे हैं, और बेल भी उनकी गोद में जाकर उछल पड़ा। बस मेरी नींद खुल गई।

दूसरा--अरे तू इसका मतलब नहीं समझ सको! युवराज शीघ्र ही राजा होंगे।

पहिला—मैं भी तो यही सोचता हूँ। पर मैंने जो दो बेल पाये हैं इससे मेरा क्या होगा?

दूसरा—तेरा क्या होगा ? तेरे खेत में इस वर्ष बगन कुछ अधिक फलेगा। और क्या।

पहिला—नहीं जी, मैं तो समझता हूँ कि मुझे दो लड़के होंगे।

दूसरा—हाँ, कल एक बड़े ही अचरज की बात हो गई है, सुनकर तुझे विश्वास नहीं होगा। उस नदी के किनारे हम और रामचरण चिउड़ा भिंगाकर खा रहे थे कि मैंने बातों ही बातों में कह दिया कि हमारे ज्योतिषीजी ने विचार कर कहा है कि युवराज की ग्रहदशा अब दूर हो चली है। अब देर नहीं है, शीघ्र ही वह राजा होंगे। अचानक ऊपर से न जाने कौन बोल उठा, "ठीक, ठीक, ठीक" ऊपर देखा तो गुलर के पेड़ पर इतनी बड़ी (हाथ से बताता है) एक छिपकली दिखाई पड़ी।

(रामचरण का प्रवेश)

पहिला—क्या खबर है, रामचरण ?

राम—अरे आज एक ब्राह्मण उस जंगल में इधर उधर युवराज को खोजता हुआ घूम रहा था। उसने मुझसे घुमा फिराकर कितनी ही बातें पूछीं। पर मैं क्या मूर्ख हूँ ? मैं भी उसे हेर-फेर के जवाब देने लगा। बहुत छानबीन करके अन्त में वह चला गया। मैंने उसे चित्तल गाँव की राह बता दी। यदि वह ब्राह्मण न होता तो मैं आज उसे जीता न छोड़ता।

दूसरा—पर अब तो इस गाँव को भी छोड़ना पड़ेगा। दुष्टों ने इसका पता भी लगा लिया है।

पहिला—यहीं बैठ न जाओ, रामचरण। कुछ बात चीत की जाय।

राम--युवराज के सहित हमारी राजकुमारी इधर ही आ रही हैं, चलो हमलोग जरा हटकर बैठें।

(प्रस्थान)

(कुमारसेन और सुमित्रा का प्रवेश)

कुमार—शंकर को उनलोगों ने पकड़ लिया है। राज का समाचार लेने के लिये विचारा वृद्ध स्वयं छद्मवेश धरकर गया था। शत्रु उसे पकड़ कर जयसेन के पास ले गये हैं। सुना है कि मेरा पता जानने के लिये उसके ऊपर घोर अत्याचार हो रहा है, पर तो भी वह अटल है। मेरे सम्बन्ध में उसके मुँह से वे लोग एक शब्द भी नहीं कहला सके हैं।

सुमित्रा--हा! वृद्ध प्रभु-भक्त! प्राण से भी बढ़कर तुम जिस कुमार को प्यार करते हो उसी के कामों के लिये अपने प्राणों को तुमने अर्पण कर दिया।

कुमार--इस संसार में वह मेरा सबसे बढ़कर हितैषी है। वह मेरा आजन्म का सखा है। अपना प्राण देकर भी वह मुझे निरापद रखना चाहता है। वह अत्यन्त वृद्ध है, उसकी देह दुर्बल और जीर्ण हो गई है। यहाँ मैं तो सुख से छिपा बैठा हूँ, पर हा! वहां वह इतनी यन्त्रणा कैसे सहता होगा?

सुमित्रा—भाई मैं जाती हूँ, भिखारिणी के वेश में जाकर राजा से शंकर के प्राणों की भिक्षा माँग लाती हूँ।

कुमार—बाहर ही से वे लोग फिर तुमको लौटा देंगे। तुम्हारे पिता के राज्य का अपमान होगा, तुम्हारे स्वर्गीय बाप दादों का सिर नीचा हो जायगा। इस अपमान की चोट वज्र की तरह मेरे हृदय में लगेगी।

(गुप्तचर का प्रवेश)।

गुप्तचर—कलरात को जयसेन ने गीधकूट जला दिया है। गृह-हीन ग्रामवासियों ने आज मन्दूरा के जंगल में आश्रय लिया है।

(प्रस्थान)

कुमार—अब तो सहा नहीं जाता, सहस्रों मनुष्यों का जीवन नष्ट करके अपने इस घृणित जीवन को कैसे धारण करूँ!

सुमित्रा—चलो, हम दोनों जने राज सभा में चलें, देखें किस साहस से कौन वहाँ तुम्हारा बाल बाँका कर सकता है?

कुमार—शंकर कहता था—यदि प्राण चले जायँ तो भी बन्दी की तरह कभी जाकर दीनता न दिखाना। बाप दादों के राज-सिंहासन पर बैठकर विदेशी राजा न्याय का बहाना करके मुझे दण्ड देगा, यह क्या कभी सहन हो सकता है? बहिन, अब मैं बहुत सह चुका; अब उसपर से पितृपुरुषों का अपमान भला कैसे सहूँ?

सुमित्रा—इससे तो मृत्यु ही अच्छी।

कुमार—कहो बहिन, कहो, इससे तो मृत्यु ही अच्छी। यही तो तुम्हारे योग्य बात है, इससे तो मृत्यु ही अच्छी। भली प्रकार विचार कर देख लो। इस प्रकार का जीवन केवल भीरुता है। क्या यह सच नहीं है? चुप क्यों हो, बहिन! विषाद से झुकी हुई आँखों से धरती की ओर न देखो। मेरी ओर देखो। देखो, इस घृणित जीवन के लिये छिपे-छिपे रात दिन मृतक बने रहना क्या मेरे लिये उचित है?

सुमित्रा—भाई—

कुमार—मैं राजपुत्र हूँ, मेरी स्वर्णमयी काश्मीर धूल में मिल रही है। गृह-हीन प्रजा जंगलों में मारी-मारी फिर रही

है, पति और पुत्र के शोक से काश्मीर की स्त्रियाँ रो रही हैं क्या तो भी मुझे किसी प्रकार छिप कर बचे रहना उचित है ?

सुमित्रा—इससे तो मृत्यु ही अच्छी।

कुमार—कहो, बहिन कहो। मेरे भक्त, जो मुझे प्राणों से भी बढ़कर प्यार करते हैं और जो प्रति दिन कठोर यन्त्रणा सहकर अपने प्राणों को मेरे लिये निछावर कर रहे हैं, क्या उनके पीछे छिपकर अपने प्राण बचाना मुझे उचित है, क्या यह वास्तव में जीना है ?

सुमित्रा—इससे तो मरना ही अच्छा।

कुमार—सुनकर मेरा चित्त शान्त हुआ। बहिन, तुम्हारे ही लिये अब तक किसी प्रकार प्रत्येक निश्वास में निर्दोषियों के प्राण-वायु का शोषण करके मैं अपने इस घृणित जीवन की रक्षा कर रहा था। अब मेरे पैरों को छूकर शपथ करो कि जो मैं कहूँगा चाहे वह कितना ही कठिन क्यों न हो उसका पालन तुम करोगी।

सुमित्रा—(पैर छूकर) मैं शपथ करती हूँ।

कुमार—मैं अपने इस जीवन को विसर्जित करूँगा। उसके उपरान्त तुम मेरे कटे हुए सिर को लेजाकर अपने ही हाथों से जालन्धर पति को उपहार देकर कहना कि—काश्मीर के तुम अतिथि हो, इसलिये इतने दिनों से तुम जिसे पाने के लिये इतने व्याकुल हो रहे थे, काश्मीर के युवराज ने उसे तुम्हारे पास अतिथि-सत्कार की भेंट के रूप में भेजा है। बहिन चुप क्यों हो ? तुम्हारे पैर इस प्रकार काँप क्यों रहे हैं ? इस वृक्ष के नीचे बैठ जाओ। क्या तुम इस काम को नहीं कर सकोगी ? क्या यह इतना दुस्साध्य है। तब क्या किसी

अनुचर के हाथ यह राज-मस्तक तुच्छ उपहार की भाँति भेजना होगा ? ऐसा करने से समस्त काश्मीर उसे क्रोध से छिन्न-भिन्न कर डालेगा।

[सुमित्रा का मूर्च्छित होना]

कुमार—छिः छिः बहिन, उठो, उठो ! हृदय पर पत्थर रख लो। व्याकुल न हो। यह काम कठिन है—इसी से तो तुम्हें इसका भार देता हूँ। ऐ प्राणप्यारी बहिन, महज्जनों के अतिरिक्त संसार के इन घोर कष्टों को कौन सहेगा ? बताओ बहिन, क्या तुम इसे कर सकोगी ?

सुमित्रा—जो कुछ तुम कहोगे, करूँगी।

कुमार—तब अपने हृदय को संभालो, उठो साहस करो। तुच्छ साधारण स्त्रियों की तरह अपने ही दुःख से आप झुक न जाओ।

सुमित्रा—अभागी इला !

कुमार—उसको क्या मैं नहीं जानता ? इतना अपमान सह कर वह क्या मुझे जीने के लिये कह सकती थी ? वह तो मेरी ध्रुवतारा है, महत मृत्यु की राह वह मुझे दिखा रही है। कल पूर्णिमा है मिलन की रात्रि है। जीवन की ग्लानि से मुक्त होकर चिर मिलन का वेश धारण करूँगा। चलो बहिन, पहिले दूत से कहला भेजूं कि कल मैं राजसभा में आकर आत्म समर्पण करूँगा। ऐसा करने से शंकर मेरा सच्चा सुहृद छुटकारा पा जायगा।

नौवां दृश्य

काश्मीर की राजसभा

विक्रमदेव और चन्द्रसेन

विक्रम—आर्य्य, आप उदास क्यों हैं? मैंने तो कुमार को क्षमा कर दिया है।

चन्द्र--तुमने तो उसे क्षमा कर दिया है पर मैंने तो अभी उसका विचार नहीं किया है। वह मेरे निकट विद्रोही है, मैं उसे दण्ड दूंगा।

विक्रम—आपने उसके लिये कौनसा दण्ड देना निश्चय किया है?

चन्द्र--राजसिंहासन से उसे वञ्चित करूँगा।

विक्रम--यह तो असम्भव है। राजसिंहासन पर मैं उसे स्वयं बैठाऊँगा।

चन्द्र—काश्मीर की राजगद्दी पर तुम्हारा क्या अधिकार है?

विक्रम—पर राज्यपर विजेताका अधिकार है।

चन्द्र--तुम यहाँ बन्धु भाव से अतिथि की तरह ठहरे हो। भला काश्मीर का राज्य तुमने कब जीता है?

विक्रम--बिना युद्ध के ही काश्मीर ने मुझे आत्म-समर्पण कर दिया है। फिर भी यदि आप युद्ध करना चाहें तो कीजिये, मैं तैयार हूँ। यह राज्य अब मेरा है मैं जिसको चाहूं दे सकता हूँ।

चन्द्र—तुम दे सकते हो? पर आत्माभिमानी गर्वित कुमारसेन को मैं जन्म से ही जानता हूँ। वह क्या अपने

पिता के राजसिंहासनको भिक्षा की तरह कभी ले सकता है? यदि उसके साथ प्रेम करोगे तो वह प्रेम करेगा, हिंसा करोगे तो वह प्रतिहिंसा करेगा, भिक्षा दोगे तो वह उसपर घृणा से लात मारेगा।

विक्रम—यदि उसको इतना आत्माभिमान होता तो क्या वह इस प्रकार आत्म-समर्पण करने के लिये स्वयं आ सकता?

चन्द्र—यही तो मैं भी सोच रहा हूँ। महाराज, यह कुमार-सेन के स्वभाव के अनुकूल काम नहीं जान पड़ता, वह दर्प से भरा युवा सिंह के समान है। वह क्या आज अपनी ही इच्छा से गले में शृंखला पहिरने के लिये यहाँ आवेगा? जीवन की ममता क्या इतनी प्रबल है?

[प्रहरी का प्रवेश]

प्रहरी—पालकी का द्वार बन्द करके कुमारसेन आ रहे हैं।

विक्रम—शिविका का द्वार बन्द करके!

चन्द्र—ठीक ही है, वह अपना मुख सब को कैसे देखा सकता है? अपने पिता के राज्य में वह स्वयं बन्दी बन कर आ रहा है। राजपथ में लाखों मनुष्य उसे देखने के लिये उत्सुक होंगे। काश्मीर की स्त्रियाँ उसे देखने के लिये झरोखे और अटारियों पर खड़ी होंगी। पूर्णिमा का चन्द्र आकाश में उसे देखने के लिये उदित हुआ है। अपने चिरपरिचित हाट-बाट बाग, मन्दिर सरोवर तथा प्रजाओं को वह अपना मुँह कैसे दिखावेगा? महाराज, मैं जो कहता हूँ उसे सुनो, गाना बजाना बन्द कर दो, तो यह उत्सव उसको उपहास सा जान पड़ेगा। आज की यह रोशनी देखकर वह सोचेगा कि रात्रि

को अन्धेरे में मेरी यह लज्जा कहीं ढक न जाय, इसी लिये इतना प्रकाश किया गया है। वह जान जायगा कि यह प्रकाश अपमान-रूपी पिशाच का परिहास है।

(देवदत्त का प्रवेश)

देव—जय हो राजन्, कुमार को मैंने वन में बहुत खोजा पर कहीं पता नहीं चला। आज सुनता हूँ कि वह स्वयं यहाँ अपनी इच्छा से आ रहे हैं। इसी से लौट आया।

विक्रम—आज राजा की तरह उनकी अभ्यर्थना करूँगा। राज्याभिषेक के समय तुम पुरोहित होगे। आज पूर्णिमा की रात्रि में कुमार के सहित इला का विवाह होगा। उसकी तैयारी मैंने किया है।

(नगर के ब्राह्मणों का प्रवेश)

सब--महाराज जय हो।

प्रथम ब्रा०--आशीर्वाद देता हूँ, आप इस समस्त पृथ्वी के सम्राट हों। लक्ष्मी आप के घर में सदा अचल निवास करें। आज जो आनन्द हम सबको दिया है उसे हम वर्णन नहीं कर सकते। महाराज, काश्मीरवासियों का यह शुभ आशीर्वाद ग्रहण करें।

(राजा के मस्तक पर धान और दूर्वा से आशीर्वाद देते हैं)

(ब्राह्मणों का प्रस्थान)

(लाठी टेकते हुए बड़े कष्ट से शंकर का प्रवेश)

शंकर—(चन्द्रसेन के प्रति) महाराज ! यह क्या सत्य है ? युवराज क्या स्वयं शत्रु को आत्म-समर्पण करने के लिये आ रहे हैं ? बताओ महराज, यह क्या सत्य है ?

चन्द्र--हाँ, सत्य है ।

शंकर--धिक्कार है ! सहस्रों मिथ्या की अपेक्षा भी इस सत्य को धिक्कार है ! हा ! युवराज तुम्हारे इस वृद्ध भृत्य ने इतनी यन्त्रणा क्या इसी लिये सही थी ! इस वृद्धावस्था में मेरी जीर्ण अस्थियाँ चूर्ण हो गईं । तो भी मेरे मुँह से एक शब्द नहीं निकला, परन्तु तुमने अन्त में स्वयं अपनी इच्छा से कैदी का वेश धारण किया । काश्मीर के राजपथ से सिर झुकाकर बन्दीगृह में चले आये । हा, क्या यह तुम्हारे पुरुषाओं की वही राज-सभा है जहाँ तुम्हारे पिता बैठकर पृथ्वी के सर्वश्रेष्ठ राजा कहे जाते थे । आज वही राज-सभा तुम्हारे लिये धूल से भी तुच्छ है । आज इससे निराश्रय पथ, अरण्य की छाया श्रेष्ठ है, पर्वतों की चोटियाँ और मरुभूमि भी राज-सम्पत्ति से परिपूर्ण है। हा तुम्हारा यह भृत्य, तुम्हारा यह अपमान और यह दुर्दिन देखने के पहिले ही क्यों न मर गया ?

विक्रम--अच्छी बातों में से बुरी को ले कर वृद्ध तुम्हारा यह रोना वृथा है ।

शंकर--राजन् ! मैं तुम्हारे निकट रोने नहीं आया हूँ । स्वर्गीय राजेन्द्र गणों की आत्मा इस राजसिंहासन के पास शोक और लज्जा से सिर नीचा किये खड़ी हैं । मेरे हृदय की वेदना वही समझ सकते हैं ।

विक्रम--मुझे अपना शत्रु क्यों समझते हो, मैं तो आज तुम्हारा मित्र हूँ ।

शंकर--जालन्धरपति तुमने बड़ी दया की कि कुमार को क्षमा कर दिया । परन्तु इस क्षमा से तो दण्ड ही अच्छा था ।

विक्रम—तुम्हारे ऐसा स्वामी भक्त सेवक कोई भी मेरे पास नहीं है।

देव—है महाराज, है।

[बाहर मंगल ध्वनि, शंख ध्वनि, और कोलाहल]

(शंकर का दोनों हाथों से अपना मुँह ढाँक लेना)

[प्रहरी का प्रवेश]

प्रहरी—महाराज, द्वार पर शिविका आ गई।

विक्रम—बाजेवाले सब कहाँ हैं, बजाने को कहो, चलो सखा आगे बढ़कर अभ्यर्थना करें।

(बाजा बजने लगता है)

[सभा में शिविका का प्रवेश]

विक्रम—(आगे बढ़कर) आओ, आओ, बन्धुवर आओ।

(सोने की थाल में कुमार का सिर लिये हुए सुमित्रा का पालकी के बाहर आना)

(सहसा बाजों का बजना बन्द हो जाता है)

विक्रम—सुमित्रा! सुमित्रा!

चन्द्रसेन—यह क्या! बेटी सुमित्रा!!

सुमित्रा—जिसको जंगलों में, पहाड़ों पर राज, धर्म्म, दया, और लक्ष्मी सबको छोड़कर खोजते फिरते थे, जिसके लिये चारो ओर दीन दुखियों पर अत्याचार कर रहे थे, मूल्य दे कर जिसको खरीदना चाहते थे, महाराज! पृथ्वी के राजवंश में सर्वश्रेष्ठ राज-पुत्र का वही सर्वश्रेष्ठ मस्तक लो। तुम काश्मीर के अतिथि हो, अपने अतिथि को उपहार-स्वरूप कुमार

ने स्वयं यह भेट भेजी है। तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हो। इस संसार में शान्ति हो, जगत में शान्ति हो। यह नरक की आग बुझ जाय और तुम सुखी हो। (उच्च स्वर से) माता, भगवती! जगतजननी! इस दासी को अपने गोद में स्थान दो।

(गिरना और मृत्यु)

[दौड़कर इला का प्रवेश]

इला—यह क्या, यह क्या, महाराज, मेरा कुमार—

(मूर्च्छा)

शंकर—(आगे बढ़कर) प्रभो! स्वामी! वत्स! प्राणाधिक! वृद्ध के जीवन-धन! तुम्हारे लिये यही उचित था, यही उचित था। तुमने आज जो राजमुकुट धारण किया है, उससे बढ़कर संसार में और कोई दूसरा मुकुट नहीं है। आज तुम राजाधिराज होकर अपने राजसिंहासन पर आये हो। मृत्यु की अमर किरणों से अपने ललाट को तुमने उज्ज्वल किया है। अब तक इस वृद्ध को ईश्वर ने तुम्हारी इसी महिमा को देखने के ही लिये जीवित रखा था। तुम पुण्य-धाम में चले गये, मैं भी तुम्हारा आजन्म का भृत्य तुम्हारी सेवा करने वहाँ आता हूँ।

चन्द्रसेन—(मस्तक से मुकुट पृथ्वी पर फेंक कर) धिक्कार है इस मुकुट को! धिक्कार है इस सिंहासन को!

(सिंहासन पर लात मारना)

[रेवती का प्रवेश]

चन्द्र—राक्षसी पिशाची दूर हो, दूर हो। पापिन मुझे अपना मुँह न दिखा।

रेवती—यह क्रोध सदा न रहेगा।

(रेवती का प्रस्थान)

विक्रम—(घुटने टेककर सुमित्रा से) देवि ! मैं तुम्हारे प्रेम के योग्य नहीं हूँ, क्या इसी से क्षमा भी नहीं किया ? सदा के लिये मुझे अपराधी बना गई ? इस जन्म में नित्य आँसू बहाकर तुमसे क्षमा माँग लेता, पर उसका भी अवकाश मुझे नहीं दिया ? देव-प्रतिमा की तरह तुम विशाल और निठुर हो, तुम्हारा दण्ड अमोघ है । तुम्हारा विधान कठिन है ।

॥ समाप्त ॥
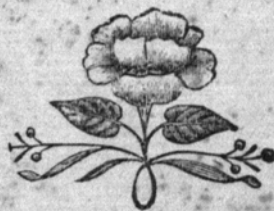
एक रुपये में ५१२ पृष्ठ

स्थायी ग्राहकोंकी आवश्यकता

है, इसलिये कि दूकानदार—छोटे बड़े, प्रसिद्ध अप्रसिद्ध प्रायः सभी—हमसे अधिकसे अधिक कमीशन चाहते हैं, साधारण कमीशनपर बेचनेको तैयार नहीं हैं। इसलिये आपसे निवेदन है कि आप इस मालाके स्थाई ग्राहक अवश्य बनें। पर्याप्त ग्राहक होनेपर हम पुस्तकोंका मूल्य और भी कम रखसकेंगे।

अभी भी हमारी मालाकी प्रत्येक पुस्तकोंका मूल्य, एक रुपये में ५१२ पृष्ठके हिसाब से होता है। कागज, मोटा ऐन्टिक।

मालामें मौलिक ग्रन्थ भी रहेंगे पर मूल्य ऊपरके ही हिसाबसे होगा।

सस्ती-साहित्य-पुस्तकमाला का नियम

१—एक रुपया प्रवेश शुल्क देकर प्रत्येक सज्जन स्थायी ग्राहक बन सकते हैं। यह कभी भी लौटाया नहीं जाता।

२—स्थायी ग्राहकोंको मालाकी प्रत्येक पुस्तकों की एक एक प्रति पौने मूल्यमें मिलेगी।

३—मालाके प्रत्येक पुस्तकोंके लेने न लेनेका अधिकार ग्राहकोंको होगा। इसमें हमारा किसी तरहका बन्धन नहीं है।

४—पुस्तकोंके प्रकाशित होनेपर उसके मूल्य आदि की सूचना ग्राहकोंको दे दी जायगी। और उसके १५ दिन बाद पुस्तक वी० पी० से भेज दी जायगी।

५—जिन लोगोंको जो पुस्तक न लेना हो वह सूचना पाते ही उत्तर दें। जिसमें वी० पी० न भेजी जाय। वी० पी० वापस कर देने पर उनका नाम ग्राहक श्रेणीसे पृथक कर दिया जायगा। यदि वे पुनः नाम लिखाना चाहेंगे तो वे वी० पी० का खर्च दे कर लिखा सकेंगे।

पता—सस्ती साहित्य-पुस्तक-माला-कार्य्यालय,
बनारस सिटी।

हिंन्दी-साहित्योन्नति के लिये

प्रयत्न करना

प्रत्येक साहित्य-सेवी का

कर्त्तव्य है

अतः अधिक नहीं केवल स्थायी ग्राहक ही बनकर इस कार्यमें हमारी सहायता करें यही प्रार्थना है। स्थायी ग्राहक बनजाने से आपको भी विशेष लाभ होगा।

नियम पृष्ठ पर देखिये

बी. एल्. पावगी द्वारा
हितचिन्तक प्रेस, रामघाट, काशी में मुद्रित.

साहित्य-सेवा-सदन, काशी

स्थायी ग्राहकों के लिए नियम

(१) प्रवेश-शुल्क बारह आने मात्र देना पड़ता है।

(२) स्थायी ग्राहकोंको इस कार्यालय के समस्त, पूर्व प्रकाशित तथा आगे प्रकाशित होनेवाले ग्रन्थों की एक एक २ प्रति पौने मूल्य में दी जायगी।

(३) किसी भी पुस्तकका लेना अथवा न लेना ग्राहकोंकी इच्छापर निर्भर है। इसके लिये कोई बन्धन नहीं है। किन्तु वर्षभर में कमसे कम ३) तीन रुपये (पूरे मूल्य) की पुस्तक अवश्य लेनी पड़ती है।

(४) पुस्तक प्रकाशित होते ही उसके मूल्यादि की सूचना भेज दी जाती है, और उसके १५ दिवस पश्चात् उसकी वी. पी. भेजी जाती है। यदि किसी सज्जन को कोई पुस्तक न लेना हो तो पत्र पाते ही सूचना देनी चाहिये। वी. पी. लौटाने से डाक-व्यय उन्हींको देना पड़ेगा, अन्यथा उनका नाम स्थायी ग्राहकों की श्रेणीसे पृथक् कर दिया जायगा।

(५) ग्राहकोंके इच्छानुसार डाक-व्यय के बचाव के लिए ३-४ पुस्तकें एक साथ भी भेजी जा सकती हैं।

(६) ग्राहकोंको प्रत्येक पत्र में अपना ग्राहक-नम्बर, पता इत्यादि स्पष्ट लिखना चाहिए।

साहित्य-सेवा-सदन, काशी

द्वारा प्रकाशित
पुस्तकों का सूचीपत्र

काव्य-ग्रन्थ-रत्नमाला—प्रथम रत्न—

बिहारी-सतसई सटीक

(७०० सातों सौ दोहों की पूरी टीका)

यह वही पुस्तक है कि जिसके कारण कविकुल-कुमुदकलाधर बिहारीलाल की विमल ख्याति-राका साहित्य-संसार के कोने कोने में अजरामरवत् फैली हुई है और जिसकी कि केवल समालोचना ने ही विद्वन्मण्डली में हलचल मचा दिया है। सच पूछिये तो शृङ्गाररस में इसके जोड़ की कोई भी दूसरी पुस्तक नहीं है। यह अनुपम और अद्वितीय ग्रन्थ है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि आज २५० वर्षों में ही इस ग्रन्थ की ३५-३६ टीकायें बन चुकी हैं। इतनी टीकायें तो तैयार हुई हैं, किन्तु वे सभी प्राचीन ढंग की हैं। इसी लिये समझ में जरा कम आती हैं। उसी कठिनाई को दूर करने के लिये साहित्य-संसार के सुपरिचित कविवर लाला भगवानदीन जी, प्रो० हिन्दू विश्व-विद्यालय काशी ने अर्वाचीन ढंग की नवीन टीका तैयार की है। टीका कैसी होगी, इसका अनुमान पाठक टीकाकार के नाम से ही करलें। इसमें बिहारी के प्रत्येक दोहे के नीचे उसके शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, वचन-निरूपण, अलंकार आदि सभी ज्ञातव्य बातों का समावेश किया गया है। स्थान-स्थान पर कवि के चमत्कार का निदर्शन कराया गया है। जगह-जगह पर सूचनायें दी गई हैं। मतलब यह क़ी सभी ज़रूरी बातें इस टीका में आ गई हैं। दूसरा परिवर्द्धित तथा संशोधित संस्करण का मूल्य १।=) बढ़िया कागज़ सचित्र का मूल्य २॥)

काव्य-ग्रन्थरत्न-माला—द्वितीय रत्न—

श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव

लेखक—श्रीयुत देवी प्रसाद 'प्रीतम'। यह वही पुस्तक है जिसकी बाट हिन्दी संसार बहुत दिनों से जोह रहा था और जिसके शीघ्र-प्रकाशन के लिये तक़ाज़े पर तक़ाज़े आते रहे। पुस्तक की प्रशंसा का भार काव्य-मर्मज्ञों के ही न्याय और परख पर छोड़ कर इसके परिचय में हम केवल इतना ही कह देना चाहते हैं कि यह ग्रन्थ भगवान् श्रीकृष्ण की जन्म सम्बन्धिनी पौराणिक कथाओं का एक खासा दर्पण है। घटना-क्रम, वर्णन-शैली तथा विषय-प्रतिपादन में लेखक ने कमाल किया है। तिस पर भी विशेषता यह है कि कविता की भाषा इतनी सरल है कि एकबार आद्योपान्त पढ़ने से सभी घटनायें हृदय-पलटपर अङ्कित हो जाती हैं। साहित्य-मर्मज्ञों के लिए स्थान-स्थान पर अलङ्कारों की छटा की भी कमी नहीं है। मुख-पृष्ठ पर एक चित्र भी है। मूल्य केवल ।-) ऐंटीक कागज़ के संस्करण का ।=)

काव्य-ग्रन्थ-रत्न-माला—चतुर्थ रत्न—

केशव-कौमुदी

(रामचन्द्रिका सटीक)

हिन्दी के महाकवि आचार्य केशव की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक रामचन्द्रिका का परिचय देना तो व्यर्थ ही है। क्योंकि शायद ही हिन्दी का कोई ऐसा ज्ञाता होगा जो इस ग्रन्थ के नाम से अपरचित हो। अतः केशव की यह पुस्तक जितनी ही उत्तम तथा उपयोगी है उतनी ही कठिन भी है। अर्थ-कठिनता में केशव की काव्यप्रतिभा उसी प्रकार छिपी पड़ी हुई है जिस प्रकार रुई के ढेर में हीरे की कान्ति। केशव की इसी काव्य-प्रतिभा को प्रकाश में लाने के लिए यह सम्मेलनादि में पाठ्य पुस्तक नियत की गई है। परीक्षार्थियों को इसका अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है। पर, पुस्तक की कठिनता के आगे इनका कोई वश नहीं चलता। उन्हें लाचार होकर हिन्दी धुरंधरों के पास दौड़ना पड़ता है। किन्तु वहां से भी "भाई हम इसका अर्थ बताने में असमर्थ हैं" का उत्तर पाकर बैरङ्ग लौटना पड़ता

है। खासकर इसी कठिनाई को दूर करने तथा उनके अध्ययन मार्ग को सुगमतर बनाने के लिए यह पुस्तक प्रकाशित की गई है। इस पुस्तक में रामचन्द्रिका के मूल छन्दों के नीचे उनके शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, नोट, अलंकारादि दिये गये हैं। यथा स्थान कवि के चमत्कार निर्देशन के साथ ही साथ काव्य गुण दोषों की पूर्ण रूप से विवेचना की गई है। छन्दों के नाम तथा अप्रचलित छन्दों के लक्षण भी दिये गये हैं। पाठ भी कई हस्तलिखित प्रतियों से मिलाकर संशोधित किया गया है। इन सब विशेषताओं से बढ़ कर एक विशेषता यह है कि इसके टीकाकार हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् तथा हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर लाला भगवानदीन जी हैं। पुस्तक परीक्षार्थीतर सज्जनों के भी देखने योग्य है। यह पुस्तक दो भागों में समाप्त हुई है। मूल्य साढ़े पांच सौ पृष्ठों के प्रथम भाग का जिसमें रंग बिरंगे चित्र भी हैं २॥।), सजिल्द ३)। द्वितीय भाग का २।), सजिल्द २॥)

काव्य-ग्रन्थ-रत्नमाला-पांचवां रत्न

रहिमन-विलास

यों तो रहीम की कविताओं का संग्रह कई स्थानों से प्रकाशित हो चुका है, किंतु हमारे इस संग्रह में कई विशेषताएं हैं। इन विशेषताओं के कारण इस पुस्तक का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है। इसका पाठ भी बड़े परिश्रम से संशोधित किया गया है। अभी तक ऐसा अच्छा और इतना बड़ा संग्रह कहीं से भी प्रकाशित नहीं हुआ है। यह पुस्तक बड़ी ही उपादेय है। हमारा अनुरोध है कि एक बार अवश्य देखिये। दूसरा संशोधित तथा परिवर्द्धित संस्करण छप रहा है।

काव्य-ग्रन्थ-रत्न माला-छठां रत्न

गो० तुलसीदासजी कृत

विनय-पत्रिका सटीक

(टीकाकार—वियोगीहरि)

सर्वमान्य 'रामायण' के प्रणेता महात्मा तुलसीदास जी का

नाम भला कौन नहीं जानता ? बड़े से बड़े राजमहलोंसे लेकर छोटे से छोटे झोपड़ों तक में गोस्वामीजी की विमल कीर्ति की चर्चा होती है। क्या राव क्या रंक, क्या बालक क्या वृद्ध, क्या मर्द क्या औरत सभी उनके रामायण का पाठ प्रतिदिन करते हैं, अङ्गरेजी-साहित्य में जो पद शेक्सपियर का है, जो पद संस्कृत-साहित्य में कालिदास का है वह पद हिन्दी-साहित्य में तुलसीदास को प्राप्त है। उपर्युक्त 'विनयपत्रिका' भी इन्हीं गोस्वामी तुलसीदासजी की कृति है। कहते हैं कि गोस्वोमी जी की सर्वश्रेष्ठ रचना यही विनय-पत्रिका है। विनय-पत्रिका का सा भक्ति-ज्ञान का दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं है। इसमें गोस्वामी जी ने अपना सारा पाण्डित्य खर्च कर दिया है। इसकी रचना में उन्होंने अपनी लेखनी का अद्‌भुत चमत्कार दिखलाया है। गणेश, शिव, हनुमान, भरत, लक्ष्मण आदि पार्षदों सहित जगदीश श्रीरामचन्द्र की स्तुति के बहाने,वेदान्त के गूढ़ तत्वों का समावेश कर दिया है। वेद, पुराण, उपनिषद्, गीतादि में वर्णित ज्ञान की सभी बातें इसमें गागर में सागर की भांति भर दी गई हैं। यह भक्ति-ज्ञानका अपूर्व ग्रन्थ है। साहित्य की दृष्टि से भी यह उच्चकोटि का ग्रन्थ है। इतना सब कुछ होने पर भी इसका प्रचार रामायण के सदृश न होने का एक यही मुख्य कारण है कि यह पुस्तक भाषा में होने पर भी, कठिन है। दूसरे वेदान्त के गूढ़ रहस्यों को समझ लेना भी सब किसी का काम नहीं। तीसरे अभी तक कोई सरल, सुबोध्य तथा उत्तम टीका भी इस ग्रन्थ पर नहीं बनी। इन्हीं कठिनाइयों को दूर करने के लिये सम्मेलन-पत्रिका के सम्पादक तथा साहित्य-विहार, ब्रजमाधुरीसार, संक्षिप्त सूरसागर आदि ग्रन्थों के लेखक तथा संकलन कर्त्ता लब्ध-प्रतिष्ठ वियोगी हरिजी ने इस पुस्तक की विस्तृत तथा सरल टीका की है। वियोगी

जी साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित हैं यह सभी जानते हैं। अतः उनका परिचय देने की आवश्यकता भी नहीं है। इस टीका में शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, प्रसंग, पदच्छेद आदि सब ही कुछ दिये गये हैं। भावार्थ के नीचे टिप्पणी में अन्तर कथाएं, अलंकार, शंकासमाधान आदि के साथ ही साथ समानार्थी हिन्दी तथा संस्कृत कवियों के अवतरण भी दिये गये हैं। अर्थ तथा प्रसंगपुष्टि के लिए गीता, बाल्मीकि रामायण तथा भागवत आदि पुराणों के श्लोक भी उद्धृत किये गये हैं। दार्शनिक भाव तो खूब ही समझाये गये हैं। उपर्युक्त बातों के समावेश के कारण यह पुस्तक अपने ढंग की अद्वितीय हुई है। अब मूढ़ से मूढ़ जन भी भगवद्-ज्ञानामृत का पानकर मोक्ष के अधिकारी हो सकते हैं। हिन्दी-साहित्य में यह टीका कितने महत्त्व की हुई है यह उदारचेता, काव्य कला-मर्मज्ञ एवं नीर-क्षीर-विवेकी साहित्यज्ञ ही बतला सकते हैं। तुलसी-काव्य सुधा-पिपासु सज्जनों से हमारा आग्रह है कि एक प्रति इसकी खरीदकर गुसाईं जी की रसमयी वाणी का वह आनन्द अवश्य लें जिससे अभी तक वे वंचित रहे हैं। छपाई-सफाई भी दर्शनीय है। मनोमोहक जिल्द बंधी हुई लगभग ७०० सात सौ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य २॥) ढाई रुपये। सजिल्द २।॥)। बढ़िया कपड़े की जिल्द का ३)।

काव्य-ग्रन्थरत्न-माला-सातवां रत्न

गुलदस्तए बिहारी

(लेखक—देवीप्रसाद 'प्रीतम')

बिहारी-सतसई के परिचय देने की कोई आवश्यकता नहीं, सभी साहित्य प्रेमी उसके नाम से परिचित हैं। यह गुलदस्तए बिहारी उसी बिहारी-सतसई के दोहों पर रचे हुए उर्दू शैरों

का संग्रह है, अथवा यों कहिये कि विहारी-सतसई की उर्दू-पद्य मय टीका है। ये शैर सुनने में जैसे मधुर और चित्ताकर्षक ही हैं वैसे ही भाव-भङ्गी के खयाल से भी अनुपम हैं। इनमें दोहों के अनुवाद में, मूल के एक भी भाव छूटने नहीं पाये हैं बल्कि कहीं कहीं उनसे भी अधिक भाव शैरों में आ गये हैं। ये शैर इतने सरल हैं कि मामूली से मामूली हिन्दी जानने वाला उन्हें अच्छी तरह समझ सकता है। इन शैरों की पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं० पद्मसिंह शर्म्मा, मिश्रबन्धु, लाला भगवानदीन वियोगीहरि आदि उद्भट विद्वानों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। अतः विशेष कहना व्यर्थ है।

छपाई में यह क्रम रखा गया है कि ऊपर विहारी का मूल दोहा देकर नीचे प्रीतमजी रचित उसी दोहे का शैर हिन्दी लिपि में दिया गया है। पुस्तकान्त में दोहों के क्रम से ये शैर उर्दू लिपि में भी छाप दिये गये हैं। ऐसा करने से हिन्दी तथा उर्दू जानने वाले दोनों ही सज्जनों के लिए यह सामान्य रूप से उपयोगिनी हुई है। पृष्ठ संख्या १७५ के लगभग। मूल्य ॥।=) सचित्र राज संस्करण का १॥) उर्दू सहित का १।) राज सं० २)

काव्य-ग्रन्थ-रत्न-माला-आठवाँ रत्न

भ्रमर गीत

यह भ्रमर-गीत महाकवि सूरदास के सूरसागर में से छाँट कर निकाली गयी है। इसका सम्पादन साहित्य-संसार के चिर परिचित एवं दिग्गज विद्वान पं० रामचन्द्र शुक्ल ने किया है। पदों के नीचे कठिन शब्दों के सरलार्थ भी दे दिये गये हैं। साथ ही प्रारम्भ में एक आलोचनात्मक विस्तृत भूमिका भी

है। हरएक साहित्य-प्रेमी को एक बार अवश्य देखना चाहिये। पृष्ठ संख्या लगभग २५० मूल्य १) मात्र

महिला। इस पुस्तक में बंगभाषा के रवीन्द्रनाथ ठाकुर, देवेन्द्र कुमार राय, रामानन्द चट्टोपाध्याय आदि धुरन्धर विद्वानों के छोटे छोटे उपन्यासों तथा लेखों का अनुवाद है। कुछ लेख लेखिका के निज के हैं, जो कि समय समय पर सरस्वती में निकल चुके हैं और जनता द्वारा काफी सम्मानित हो चुके हैं। पुस्तक बड़ी ही रोचक तथा शिक्षाप्रद है, खास कर भारतीय महिलाओं के लिये बड़े काम की है। इसे संयुक्त-प्रान्त की गवर्नमेण्टने पुरस्कार पुस्तकों तथा पुस्तकालयों (Prize books and Libraries) के लिये स्वीकृत किया है। कुछ स्कूलों में पाठ्य-पुस्तक भी नियत की गई है। और कुछ नहीं, आप केवल निम्नलिखित सम्मतियों को ही देखिये।

पुस्तक की सुन्दरता में भी किसी प्रकार की कोर-कसर नहीं की गई है। विविध प्रकार के सात रंग-बिरंगे-चित्रों से विभूषित, एँटीक पेपर पर छपी लगभग २२५ पृष्ठवाली इस पुस्तक का मूल्य सर्वसाधारण के हितार्थ केवल १॥) रखा गया है।

पुस्तक पर आई हुई कुछ सम्मातियां—

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने अपने उन्नीसवें वर्ष के कार्य्यविवरण में " कुसुम संग्रह की गणना उत्तम पुस्तकों में करके इसका गौरव बढ़ाया है।

The book will form an admirable prize Book in girls' school...We repeat that the book will form a nice useful present to females. It is not less interesting to the general reader.

The Modern Review.

The language of the book is excellent and the subjects treated are also very useful.—MAJOR B. D. Basu, I. M. S. (Retired) Editor, the Sacred Books of the Hindu–Series.

कहानियाँ और लेख मनोरंजक और उत्तम हैं।-विहार-बन्धु।

निबन्ध सुपाठ्य और उपयोगी हैं। कागज और छपाई भी अच्छी है। —भारतमित्र।

कुसुम संग्रह मुझे बहुत पसंद है।-सत्यदेव (परिब्राजक)।

हिन्दी-साहित्य-भण्डार में अनोखी वस्तु है। लेख सबके पढ़ने योग्य; बहुत ही रोचक तथा शिक्षाप्रद हैं। स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी लेख तो बहुत ही उत्तम हैं। —लक्ष्मी।

लेखन शैली उत्तम है।... पात्रों के चरित्र-चित्रण देखकर खुशी होती है पुस्तक बड़ी उत्तमता से छापी गई है। जासूस।

कुसुम-संग्रह के कुसुम बहुत ही मुग्धकर हैं।...इन फूलों काआघ्राण हिन्दी के रसिक पाठकों को अवश्य लेना चाहिये। —हिन्दी बङ्गवासी।

कुसुम-संग्रह का समालोचना-भार पाकर हम अपने को सचमुच बड़भागी समझते हैं। उनमें से बहुत सी तो मन लुभाने वाली आख्यायिकाएं हैं, बहुत सी स्त्री-शिक्षासम्बन्धी उपदेश मालाएं हैं और बाकी सब विविध विषयों पर हैं।... और अधिक स्तुति हम आवश्यक नहीं समझते।... कुसुम-संग्रह में कविता नहीं ......पर.........प्रत्येक गद्य-पृष्ठ से कविता का मधुर रस चू रहा है। —गृह लक्ष्मी।

सच्चे सामाजिक उपन्यासों के भण्डार की पूर्ति ऐसी ही पुस्तकों से हो सकती है।...इसमें ऐसी शिक्षाप्रद, आख्या-यिकाओं का समावेश है जिनको पढ़कर साधारणतया सभी स्त्रियों के आदर्श उच्च हो सकते हैं और सामाजिक जीवन

प्रशस्त जीवन बन सकता है। ... स्त्रियों को चाहिये कि ऐसी पुस्तकों का अध्ययन किया करें। भाषा बहुत सरल है, जिससे लेखिका का उद्योग भलीभांति पूर्ण हो गया है। छपाई बहुत ही अच्छी है। नवजीवन।

भारतेन्दु-स्मारक ग्रन्थ-मालिका-संख्या २

मुद्राराक्षस

भारत-भूषण भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी के मुद्राराक्षस का अभी तक कोई शुद्ध तथा विद्यार्थियोपयोगी संस्करण नहीं निकला था जो संस्करण आजकल बाजार में बिक रहा है वह अशुद्ध है। इसीलिये नागरी-प्रचारिणी-सभा के उपमन्त्री जी ने बड़े परिश्रम से इसका पाठ शुद्ध कर तथा विद्यार्थियों के उपकारार्थ आलोचनात्मक भूमिका के साथ ही साथ भरपूर टिप्पणी देकर यह संस्करण निकाला है। इसका संशोधन बा० श्यामसुन्दर दास तथा पं० रामचन्द्र शुक्ल ने किया है। लगभग साढ़े तीन सौ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य १)

पुस्तक-भवन द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

पुस्तक-भवन सीरीज संख्या १

एम० ए० बनाके क्यों मेरी मिट्टी खराब की?

गुजरातीके सुप्रसिद्ध लेखक अमृत केशव नायककी, इसी नामकी पुस्तक का यह अनुवाद है। जिस समय यह गुजराती में निकली थी उस समय बड़ा हलचल मच गया था और इसके कई संस्करण हाथों-हाथ बिक गए थे। हिन्दीमें शिक्षाप्रद होनेके साथ ही साथ रोचक भी हों, ऐसे उपन्यासोंकी बड़ी कमी है। इस पुस्तक में ये दोनों ही गुण हैं। बड़े-बड़े विद्वानों

और पत्रपत्रिकाओंने इसकी बड़ी तारीफ की है । उपन्यास-प्रेमियोंको एक बार इसे अवश्य पढ़ना चाहिये । पृष्ठ-संख्या ४०० चारसौ के लगभग । मूल्य २)

देखिये चित्रमय-जगत क्या कहता है :—

" यह एक उपन्यास है । इसमें एक एम० ए० पास हुए युवक की करुण कहानी है । इसी के सिलसिले में एक पारसी युवक-युवती का चरित्र भी इसमें है । एक शायर ने कहा है—

तालीम युनिवर्सिटीकी खाना खराब की ।
एम. ए. बनाके क्यों मेरी मिट्टी खराबकी ॥

बस इसी शेरको सब रीतिसे चरितार्थकर बतानेवाला यह एक घटनापूर्ण, मनोरंजक और हृदय-द्रावक उपन्यास है । वास्तवमें इसके पढ़ने में दिल लगता है, और कुतूहल पैदा होता है । आजकल युनिवर्सिटीकी उपाधियोंके लिये लालायित होने वाले नवयुवकोंको यह पुस्तक एकबार अवश्य पढ़नी चाहिये।"

पुस्तक-भवन-सीरीज संख्या २.

शैलबाला

यह एक ऐतिहासिक मनोरंजक तथा चित्ताकर्षक उपन्यास है । इसमें कुमार अमरेन्द्र और गोविन्दप्रसादका अत्याचार, दृढ़प्रतिज्ञ सुरेन्द्रसिंह की वीरता, शैलबाला का आदर्श प्रेम और सतीत्वरक्षा, योगिनी की अद्भुत लीला, इत्यादि पढ़ते पढ़ते कभी आपको हँसी आवेगी तो कभी रुलाई, कभी घृणा उत्पन्न होगी तो कभी आसक्ति । इस उपन्यास के पढ़नेसे आप को पता चलेगा कि अन्तमें धर्मात्माओंकी, अनेक कष्टोंके सहने पर कैसी जीत होती है और दुरात्माओंकी कैसी दुर्दशा । मूल्य २०० पृष्ठों की सचित्र पुस्तकका केवल १)

हिन्दी संसार में हलचल

एक रुपये में ५१२ पृष्ठ

स्थायी ग्राहकों को ६८८

किसी भी साहित्य की उन्नति करने के लिए यह पूर्ण आवश्यक है कि उसमें संसार के लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों, लेखकों, कवियों, भगवद्भक्तों की ग्रन्थावलियाँ सस्ती तथा सुलभरूप में निकाली जायँ। इसी उद्देश्य को सामने रख कर प्रकाशक ने निःस्वार्थभाव से सस्ती-साहित्य पुस्तक-माला नाम की एक ग्रन्थमाला निकालना प्रारम्भ किया है। इसमें प्रत्येक ५१२ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य, जिसका कि अन्य प्रकाशक लोग ४-४, ५-५, रुपये अथवा इससे भी अधिक रखते हैं, केवल एक रुपया रखा जाता है। आप परीक्षा स्वरूप इसकी किसी भी पुस्तक को लेकर उपर्युक्त बात की जांच कर सकते हैं। यदि आप को इस बात का निश्चय हो जाय कि वास्तव में प्रकाशक ने स्वार्थत्याग किया है और ऐसी पुस्तकों की आवश्यकता है तो स्वयं इस माला की पुस्तकों को खरीदिये और अपने मित्रों को तथा अन्य परिचित-जनों को इस बात की सूचना देकर खरिदवाइए। आशा है कि आप हिन्दी साहित्य के नाते इस कार्य में प्रकाशक को सहायता देंगे तथा देश का उपकार करेंगे।

प्रकाशित पुस्तकें

बांकिम ग्रन्थावली—बंकिम बाबू के आनन्दमठ, लोकरहस्य तथा देवीचौधरानी का अविकल अनुवाद। पृष्ठ संख्या ५१२ मूल्य १) सजिल्द १।) द्वितीयावृत्ति शीघ्र छपेगी।

गोरा—जगद्विख्यात रवीन्द्रनाथ ठाकुर कृत गोरा नामक पुस्तक का अविकल अनुवाद। पृष्ठ संख्या ६८८ मूल्य १।-)॥ साजिल्द १॥=)

बंकिम-ग्रन्थावली—द्वितीय खंड—बंकिम बाबू के सीताराम और दुर्गेशनन्दिनी का अविकल अनुवाद ॥।-)॥ सजिल्द १=) पृ० सं० ४३२

बंकिम-ग्रन्थावली—तृतयि खंड—बंकिम बाबू के कृष्णकान्तेर विल, कपाल कुण्डला और रजनी का अविकल अनुवाद, पृ० ४३२ मू० ॥।-)॥ साजिल्द १=)

चण्डी चरण ग्रन्थावली—प्रथम खंड—अर्थात् टाम काका की कुटिया। पृ० सं० ५९२ मूल्य १=)॥ सजिल्द १॥)

साहित्य-सेवा-सदन, सस्ती—साहित्य पुस्तकमाला तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन परीक्षा तथा हिन्दी की उत्तमोत्तम पुस्तकें मिलने का पता—

पुस्तक-भवन,

बनारस सिटी।